द्वा० -(करुणा से)

रेख़ता ।

पूछैं न नाथ मुझसे दुख राजनन्दिनी का ।
त्यागैं न प्रान तन को लखि रूप बन्दिनी का ॥
पारा समान गति है दिन रैन तासु ही का ।
रन में चढ़े सुभट लौं टुक लोभ है न जी का ॥
मृग के वियोग भय तें जो हाल हो मृगी का ।
चकवा संजोग के हित गति रैन जो खगी का ॥
घन रूप हेरिबे हित जिमि आस मोरिनी का ।
ताहू तें बेस प्रभु हित है हाल रुक्मिनी का ॥
तरिवर लौं मौन साधे सहती हैं सब किसी का ।
अरजुन की भांति केवल तकती हैं लच्छ पी का ॥
सब लोक लाज तजिकै हरिश्रौध आपही का ।
करती हैं ध्यान निसदिन जिमि राहिनी ससी का ॥

श्रीकृ० —"द्विजदेव ! प्राणप्यारी रुक्मिणी जिसका यह प्रण है (टरैं चन्द्र, इत्यादि पढ़ते हैं) और जिसकी मेरे लिये इतनी उत्कण्ठा है (मृग के वियोग, इत्यादि पढ़ते हैं) क्या मेरे बिरह दुःख से दुखी होकर अपने प्राण को त्याग सकती है। हाय !! क्या मेरे जीते प्रियतमा को यह दशा हो सकती है !!! कदापि नहीं। चन्द्रमा के प्रकाशित रहते कुमोदिनी कब मलीन हुई

है ? अगाध जलशाली अकूपार का भगवती भागीरथी को कब वियोग हुआ है ?

ब्रा०—सत्य है ! किन्तु जहां तक हो सके इस कार्य्य के लिये शीघ्र यत्नवान होना चाहिये, क्योंकि कृषी सूख जाने पर वर्षा निष्फल होती है; वृक के बालक उठा ले जाने पर ग्रामवालों का उद्योग व्यर्थ होता है।

श्रीकृ०—द्विजपुंगव ! आप आकुल न हों, यदि भवदीय प्रसाद होगा, तो जैसे उद्योगी पुरुष दुष्ट जन्तुओं से रक्षित रहकर समुद्र के हृदय में से रत्नराशि संग्रह करता है, और वीर पुरुष करिकुम्भ विदीर्ण करके मुक्ता ग्रहण करता है। उसी प्रकार रुक्म व शिशुपाल प्रभृति का उच्छेदन करके मैं आपकी राजकन्यका को प्राप्त करूंगा। अन्यथा कदापि न होगा।

ब्रा०-(हाथ उठाकर) ईश्वर से प्रार्थना है कि वह ऐसा ही करे, और रुक्मिणी की आशालता को जो मुरझा सी रही है निज कृपा वारिवृष्टि से सिंचित कर हम लोगों को आनन्दित बनावे। विशेष क्या ?

(भगवान श्रीकृष्ण और ब्राह्मण का प्रस्थान)

(जवनिकापतन)

पञ्चमाङ्क।

(स्थान राजभवन)

(महारानी रुक्मिणी शोकाकुल प्रकार सिंहासन पर बैठी हैं और अनामा, अनाभिधाना पास खड़ी हैं)

अ०मा०—राजकन्यके! आज विवाह का पहिला दिन है, नगरनिवासियों का हृदय प्रफुल्ल शतदल समान सुविकसित है। पर हाय! तुमारी यह दशा देखकर हम दोनों का हृदय दाड़िम की भांति विदीर्ण हो रहा है, हर्ष का लेशमात्र भी नहीं है।

श्रीरु०—सखी! क्या मेरी यह दशा कभी ईर्षा छोड़ सकती है? अभी तो केवल प्राणनाथ के न आने के समाचार को पाकर मन अर्ध मृत सर्प समान तड़प रहा है, न जाने इसकी उस समय क्या गति होगी, जब इसको प्रियतम के वियोग का पूरा भय हो जावेगा।

अ०ना०- राजतनये! ऐसा क्यों होगा, क्या किसी ने हिमगिरिनन्दिनी का विवाह बलात् पुरन्दरादि से कर दिया? किन्तु भगवान श्रीकृष्ण पर अपनी इस धर्म संकटापन्न अवस्था को तुम्हें प्रथमही प्रगट करना योग्य था।

श्रीरु०- सखो ! तुमसे क्या दुराव है, मैंने कई दिन हुआ एक ब्राह्मण द्वारा अपनी अवस्था प्राणप्यारे पर प्रगट कर दी है । पर हाय! प्राणनाथ ने उसका स्वल्प ध्यान भो नहीं किया ।

अ०मा०—ऐसा कहना कदापि योग्य नहीं ह, वे अन्तर्यामी हैं, बिना आये न रहेंगे ।

श्रीरु०—यदि प्रचण्डविक्रम सिंह की शरण में जाने पर भो शृगाल का भय हुआ, तो सिंह के शरण में जानेही से क्या लाभ है ? जिस तृषार्त्त ने जल की अप्राप्ति में अपना प्राण त्याग दिया, उसको फिर समुद्रही मिले तो क्या प्रयोजन ? यदि मुझको शिशुपाल का मुख देखनाही पडा, और मैंने अपना प्राण त्यागही दिया, तो प्राणप्यारे आहो के क्या करेंगे ।

अ०मा०—ऐसा कब हो सकता है । क्या सन्ध्या समागम से निशाकर अपनी कम शोभा समझता है ? क्या ऊषा से सम्मिलित होने के लिये दिनेश कम आकुल होता है ?

श्रीरु०—यदि ऐसा है तो प्राणनाथ अब तक क्यों नहीं आये ? क्या मुझको कुरूपा समझा, अथवा ब्राह्मण वहां नहीं पहुँचा, यद्यपि गुरुजनों ने उनको न आने

दिया, क्या कारण है, सखी इस काल मेरी वही दशा है, जैसी मयूरी की घनागम की प्रत्याशा में ग्रीष्म-ऋतु के अन्त में होती है।

भ॰मा॰—कल्पना किया भगवान श्रीकृष्ण किसी कारण से आज न आये, तो क्या रुक्म अम्बालिका की कथा नहीं जानता, जो बालात् शिशुपाल से तुमारा पाणिग्रहण करेगा।

श्रीरु॰—किसी विषय के जानने पर किसी कार्य्य का भार नहीं है, यदि उसके विषय में बिवेचना न की जावे। चन्द्रमा जानता था की गुरुपत्नीगमन करने से महापाप होता है, फिर उसने ऐसा क्यों किया?

भ॰मा॰—राजकन्यके! रुक्म के जानने और न जानने से क्या प्रयोजन है? मेरा मन साक्षी देता है कि भगवान श्रीकृष्ण बिना आये न रहेंगे।

श्रीरु॰—यदि न आये तो क्या मैं अम्बालिका की भांति एक की होकर दूसरे की बनूंगी, और अपने को कलङ्किनी बनाने में बाध्य हूंगी, कदापि नहीं। मैं अपने प्राण को शरीर से ऐसे निकाल दूंगी जैसे पक्षी पिञ्जरे से निकल जाता है, और उसका उसको कुछ स्नेह नहीं होता।

अ०मा०—ऐसा मत कहो, शरीर रहेगा तो बहुतेरे उपयुक्त वर मिल रहेंगे । केतकी के सुगन्धित रहते अनेक चञ्चरीक उसके दृष्टिगोचर हो रहते हैं ।

श्री०--आह सखी ! तू इतनी मूढ़ है ! यह भी नहीं जानती कि त्रिलोक में भगवान श्रीकृष्ण समान और कौन हो सकता है ।

छन्द ।

कब मिलि अमित खद्योत रविसम होंहिं कहहि बिचारिकै।
मिलि अधिक उडुगण होंहि कब सम चन्द पेख निहारिकै॥
नहिं होय कबहुं अनेक लघु नद मिलि नदीस समान कै ।
तिमिमिलिअमितजगनृपति कबसम होंहिंप्रियतमप्रानकै ॥

इसके अतिरिक्त क्या केतकी की भांति मैं अनेक की प्रत्याशा कर सकती हूँ ? नाहि । इस बात के तो सुनने से भी पाप लगता है ।

अ०मा०—राजात्मजे ! इतना बिकल होने की कोई आवश्यकता नहीं है मुझे दृढ विश्वास है कि कोई शीघ्र आकर इस वाक्यरव से कि भगवान श्रीकृष्ण आगये तुमारे मन को वैसाही प्रसन्न किया चाहता है, जैसा जनकनन्दिनी का मन धनुषभङ्ग के शब्द को सुनकर प्रसन्न हुआ था ।

श्रीस॰—सखी! कोई वह समय भी होगा, जिस समय मेरे श्रवणों में यह शुभसमाचार सीपी में स्वातिबुन्द समान पड़कर सुखद होगा।

छन्द।

कोउ होयगो वह समय जब प्रियप्रान की सुधि पाइहौं।
हिय हरषि निरखन हेत छबि जिय अमित मोद बढ़ाइहौं॥
बदि ताप उपतापादि को दुख सकल दूर बहाइहौं।
व्रत नेम तप उपवास को यह अमल फल इक पाइहौं॥
पै होत नहिं विस्वास कबहुं कि त्यागि हठ बिधि देयगो।
करि काज बिरहिन को सकल जग सुजस अनुपम लेयगो॥

(ब्राह्मण आकर उसी सुर में पढ़ता हुआ)

लखि कोप तव बिधि सहमि निज हठ कबहिं दीनो त्यागि है।
अब छाड़ि निद्रा मोह की तव भाग अनुपम जागि है॥
जिमि रैन कारो अन्त में जग बिमल होत प्रभात है।
तिमि निवरि दुख अब होयगो सुख कहत साँचो बात है॥

अ॰मा॰—(स्वगत) अहा! घन के गम्भीर निनाद से मयूरी समान राजनन्दिनी द्विजदेव के वाक्यों को श्रवण कर कैसी प्रसन्न हो गई हैं, शरीर जो कुम्हलाये हुये फूल के समान था अब कैसा प्रफुल्लित हो गया है। निर्वाणोन्मुख दीपक समान कैसा प्रज्वलित हो उठा है। सत्य है! "परमेश्वर की परतीति यही मिलो चाहिये ताहि मिलावत है।

अ॰मा॰ –(श्रीरुक्मिणी का भाव समझकर) द्विजदेव ! राजनन्दिनी द्वारिका का समाचार पूछती हैं ?

ब्रा॰ – जब मैं राजनन्दिनी से विदा होकर नगर बाहर गया उस काल मेरे में वायु से अधिक. शशाङ्क के मृगों से विशेष. खगराज तुल्य गति हो गई, और मैं अल्पकाल में द्वारिका पहुंच गया ।

अ॰मा॰—तब क्या हुआ ?

ब्रा॰ - देखतेही देखते कुछ काल में वहां पहुंचा, जहां भगवान श्रीकृष्ण कोटि कन्दर्पदर्पशमन करके सिंहासन पर शोभायमान थे ।

अ॰मा॰ - फिर क्या हुआ ?

ब्रा॰ भगवान ने मेरा बड़ा सन्मान किया, और मुझ से सस्नेह राजनन्दिनी का सकल समाचार पूछ २ कर बड़े प्रेम से सुना, और राजतनया का निवेदनपत्र पढ़कर ऐसे गद्गद हुये कि नेत्रों से निर्झर समान नीर झरने लगा, और उनकी जनक की भांति विदेहता हो गई ।

श्रीरु॰—(स्वगत) मन ! धीरज धर ! बहुत दिनों पर तेरी अभिलाषा की बेलि में इष्ट प्राप्ति का फूल लगा है । फिर इतना क्यों आकुल होता है, यदि प्राणेश ऐसे आर्द्रहृदय हैं तो संयोग का फल लगने में क्या बिलम्ब है ।

प्र०मा०—हां! तब क्या किया?

भा०—जब भगवान का चित्त स्वस्थ हुआ, मुझे लेकर राजसभा में गये और महाराज उग्रसेन व पितृचरण वसुदेव को सकल समाचार सुनाकर कुण्डलपुर आने की आज्ञा चाही।

प्र०मा० - हां! कहे जाइये।

भा० - यद्यपि प्रथम उनलोगों की भगवान के वियोग की आशंका से वही दशा हुई जैसी महाराज दशरथ को भगवान रामचन्द्र के तपोधन विश्वामित्र के साथ जाने के समय हुई थी। किन्तु भगवान श्रीकृष्ण को नितान्त उत्सुक देखकर उनको यहां आने की आज्ञा दी, और श्रीबलराम को बहुत सी सेना के साथ उनके संग कर दिया।

प्र०मा० --(आकुलता से) क्या भगवान श्रीकृष्ण कुण्डलपुर में आगये?

भा०—हां! आगये, मैंने महाराज भीष्मक पर इस भेद को प्रगट कर दिया है, भगवान राजवाड़ी में साग्रज सब सैन्य के विराजमान हैं, अनेक स्त्री पुरुष वहां जा जाकर उनके मुखमयङ्क की सुधा अपने नैन चकोर से पान कर रहे हैं, और प्रार्थना करते हैं कि हे ईश्वर! जैसे तूने दमयन्ती को नल से, शकुन्तला को

दुष्मन्त से और विदेहजा को रामचन्द्रजी से मिलाकर उनको सुखी किया वैसेही हमारी राजनन्दिनी को भी भगवान श्रीकृष्ण के समागम से सुशोभित करके इस को सुखी कर ।

दो॰स॰—हम दोनों को भी ईश्वर से यही प्रार्थना है ।

ब्रा॰—हमारी भी ।

(महारानी रुक्मिणी लज्जा से सिर नीचा कर लेती हैं और फिर अनामा से कुछ कहती हैं)

अ॰मा॰—द्विजराज ! राजनन्दिनी कहती हैं कि आप जा कर भगवान श्रीकृष्ण को इस विषय से अभिज्ञ कर दें कि आज दो घड़ी दिन शेष रहे नगर की पश्चिम दिशा में देवी का जो एक मन्दिर है वहां पूजा करने के लिये वह जावेंगी । भगवान को वहीं आकर कुमारी के प्रण की लज्जा रखनी योग्य है ।

ब्रा॰—जो आज्ञा (जाना चाहता है)

श्रीकृ॰—(स्वगत) अहा ! द्विजदेव ने भी मेरे साथ कितना उपकार किया है, उपकार क्या यदि सूक्ष्म दृष्टि से विवेचना की जावे तो प्राणदाता येही महाशय हैं, अतएव इनकी सेवा में यदि रोम रोम से करूँ तौभी थोड़ी है । इनके लिये यदि मैं तन मन धन तीनों को निछावर कर दूँ तौभी इनसे उऋण होना कठिन है ।

इनका उपकार मेरे साथ ऐसाही है जैसा घनागम में वायु का चातिकों के साथ (सकृपा दृष्टिपात)

(ब्राह्मण का प्रस्थान)

अ०मा० —सखी अनाभिधाने ! यद्यपि राजनन्दिनी की मनोकामना पूरी होने से हम दोनों को इस काल वैसाही आनन्द है जैसा प्रियम्वदा और अनसूया को शकुन्तला और दुष्यन्त के समागम से हुआ था किन्तु यह आनन्द स्वच्छ नहीं है, इसके साथ उद्वेग का अंश भी मिला हुआ है । क्योंकि राजकन्या की वियोग-आशंका से हम दोनों को उन्हीं दोनों के उस समय की दशा समान दशा हो रही है जिस समय शकुन्तला के महात्मा कन्व से बिदा होकर राजभवन में जाने का समाचार तपोवन में फैल गया था ।

अ०ना० —सखी ! इस समय हम दोनों का दुःख सुख कार्तिक अथवा चैत्र के दिवारात्रि की तरह समान है अतएव इस मङ्गलकार्य्योपलक्ष में खेद प्रकाश करना अनुचित जान पड़ता है ।

अ०मा० —सत्य है ।

(एक स्त्री का प्रवेश)

स्त्री० —राजनन्दिनी ! अब चार घड़ी दिन और रह गया,

अतएव आपको माता ने गौरीपूजन निमित्त स्नान और शृङ्गारादि द्वारा आपको सज्जित करने के लिये बुलाया है ।

श्रीम०—बहुत अच्छा, आओ सखियो चलें ।

दोनो०—चलो ।

(सब जाती हैं)

(जवनिका पतन)

षष्टमाङ्क ।

(जनवासे का एक विस्तृत भवन)

(शिशुपाल, जरासन्ध, शाल्व, बिदूरथ, रुक्म, दन्तबक्र प्रभृति अनेक सूरमें यथास्थान बैठे हैं)

शि०—(भय से) मैंने सुना है, आज बहुत सी सेना लेकर बलराम श्रीकृष्ण यहां आया है । यदि यह सत्य है तो इस विवाह के मङ्गलकार्य्य में बिना कोई उत्पात हुये न रहेगा, क्योंकि जैसे दैविक उत्पात के चिन्ह आकाशादि का अरुण होना और प्रतिमा प्रभृति का हँसना है, उसी प्रकार भौतिक उत्पात का चिन्ह इन दोनों का किसी शुभकार्य्य में आगमन करना है । अतएव मैं पहलेही कहे देता हूँ कि हमलोगों को बहुत सतर्क रहना समुचित और योग्य है ।

शा०—(हँसकर) क्या सिंह कभी क्षुद्रतम जन्तु शशक के त्रास से अपने किसी कार्य्य में सावधानी ग्रहण करता है ? क्या टीड़ीदल अथवा कीड़ीदल समान यादवों की सेना हमसे सूरों का सामना कर सकती है ?

वि०—इस विषय में विवाद कौन करे किन्तु शत्रु को तुच्छ समझकर अपने कर्तव्य से समय पर चूक जाना नितान्त अयुक्ति है। भारतवर्ष में टीड़ीदल जिस क्षेत्र पर पड़ता है उसको बिल्कुल सत्यानाश कर देता है। क्षुद्र पिपीलिका जब काल पाकर गजेन्द्र के शरीर में उत्पन्न हो जाती हैं, तो उसके समान बलिष्ट जन्तु का नाश करने में भी नहीं चूकतीं।

अ०—सत्य है, पर उनकी सेना टीड़ीदल अथवा कीड़ीदल नहीं है। वह प्रचण्ड वायु के समान है जिसके सन्मुख पादक ऐसे दृढ़ सूरमों का भी पैर उखड़ जाता है, और वे क्षुद्रतम जन्तु शशक समान नहीं हैं, प्रचण्ड बलशाली गैण्डे के तुल्य हैं, जिसके खाँगों के भय से सिंह का भी कलेजा दहलता है।

दं०—तो क्या आपलोग शत्रु का बलकथन करके हमसे सूरमों का उत्साह भङ्ग कर सकते हैं ?। कभी नहीं, रणभूमि में यदि काल स्वयं आकर सन्मुख हो तौभी हमलोग सशंकित नहीं हो सकते !! कृष्ण बलराम किस गिनती में हैं !!

ज०—मैं कुछ उनकी प्रशंसा नहीं करता, पर जो बात सत्य है उसको छिपा भी नहीं सक्ता, महात्मा वशिष्ट के तपोधन विश्वामित्र परम शत्रु थे। पर जिस कुल सती अरुन्धती ने पूर्णिमा के शशि की सुखमा अवलोकन कर उनसे पूछा इस समय संसार में ऐसा निर्मल यश किसका है। महात्मा वशिष्ट ने ईर्षा छोड़ कर कहा ऋषिवर्य्य विश्वामित्र का—

शा०—कृष्ण बलराम में ऐसी कौन विशेषता है, जिससे आपके कथन को हम सत्य जानें।

ज०—सो कुछ अप्रगट नहीं है। इन लोगों ने बाल्यावस्था में बड़े २ दानवों को खेल में मार लिया, दुर्धर्ष अथच परमबलिष्ट कंस को देखते २ मार गिराया। मेरे त्रयोविंशति अक्षौहिणीदल को सत्तरह बार ऐसे काट डाला, जैसे कृषक क्षेत्र को बिना प्रयास काट डालता है। अठारहवीं बार न जाने क्यों मेरे सम्मुख से भागे, और एक पर्वत पर चढ़ गये, जब मैं ने पर्वत को जला दिया, वह लोग इस प्रकार अपना प्राण लेकर वहां से अन्तर्ध्यान हो गये जैसे देवराज इन्द्र नृपति सगर के यज्ञशाला में से श्यामकर्ण लेकर अन्तर्ध्यान हो गया, कि किसी ने देखा तक नहीं॥

रु०—(शोक से स्वगत) आह! क्या कृष्ण ऐसा प्रबल है,

यह सुनकर मेरा हृदय कांच की भट्ठी समान जलही रहा था कि महाराज भीष्मक राजबाडी में उनसे मिलने के लिये गये थे। अब जरासंध के वाक्यों ने उस पर और रंग जमाया। पर हाय! उपाय क्या है, मैं ने पिता से पूछा भी तो कि कृष्ण किसका बुलाया आया है, पर उन्हों ने कुछ न बताया, प्रति वाक्यों से अपने को निर्दोष निश्चित किया दैव बड़ा दुर्दान्त है जो अब इस प्रकार सुसज्जित नानाभांति के सुन्दर व्यंजनों को विष डालकर बिगाड़ा चाहता है॥

शा०- जो हो, पर एक कृष्ण नहीं यदि ऐसे २ सौ कृष्ण हों और एक बलराम नहीं सहस्रों बलराम आवें, इन्द्र, शिव, सुरसेनपादि पृथ्वी में आकर उनकी सहायता करें, तो भी अकेला मैं उनको ऐसे जीत लूंगा, जैसे प्रात समय एकाकी भगवान दिवाकर ग्यारह सहस्र राक्षसों को जीतकर उदय होते हैं॥

दं०—अहा! युद्ध का नाम सुनतेही मेरी भुजायें कैसी फड़क उठी हैं, हृदय में कैसा वीररस का उद्रेक हो आया है, मन को कैसा रणोन्माद हो रहा है मानों अभी संग्राम भूमि में चलकर अपने प्यासे बाणों को शत्रु के रुधिर पान से तृप्ति कराया चाहता हूं॥

ज०—"सुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी, यों तो

बहने के लिये सभी कह सकता है, हम त्रिलोक बिना प्रयास क्षण भर में जय कर सकते हैं। पर जब रणभूमि का मुख देखना पड़ता है तो बहुतों के हाथ पैर फूल जाते हैं। जिस प्रकार शोभाशाली मार्तण्ड के उदय होतेही तारागणों का प्रकाश और तेज भली भांति जाना जाता है, उसी प्रकार रणभूमि में पदार्पण करतेही बाचालों का बल और पराक्रम सब पर प्रगट हो जाता है॥

शा०—तो क्या आपकी इच्छा है कि पवित्र क्षत्रियशोणितेच्छु न होकर प्राण की आशंका से घर भाग चलें ?

ज०—यह मैंने कब कहा है, मेरी यह इच्छा कदापि नहीं है, किन्तु मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसा प्रयत्न किया जावे जिस में उत्पात का भयही न होवे। और जैसे भगवान विष्णु ने समुद्र का मथन करके कौशल से ललनाललाटभूषा लक्ष्मी को प्राप्त किया, वैसेही हम लोग अपनी सुयुक्ति बल से राजनन्दिनी रुक्मिणी को निर्विघ्न प्राप्त करें क्योंकि यह युद्धविग्रह का समय नहीं है॥

रु०—(क्रोध से) आप लोग पहरों से किसके लिये इतना भावित हो रहे हैं। मैं शपथ करके कहता हूं कि युद्ध समय यदि इस गोपजात का प्रत्येक श्वास श्वासवीर्य

के श्वास की भांति एक वीर बन जावेगा, प्रत्येक रक्त-बिन्दु रक्तवीर्य्य के रक्तबिन्दु समान एक योधा हो जावेगा, प्रत्येक छिन्न अंग पुरुभुज समान एक सूरमा बनकर खड़ा होगा, तब भी वह मेरे तीक्ष्ण बाणों से त्राण पाकर द्वारका न जा सकेगा। सैन्य की कथाही क्या है॥

दं०—सत्य है! सूरमाओं को ऐसाही अभिमान रखना योग्य है। जय विजय तो ईश्वर के हाथ है॥

(एक द्वारपाल का प्रवेश)

द्वा० - (प्रणाम करके) महाराज की आज्ञा थी, कि जिस समय राजनन्दिनी देवीपूजन के लिये नगर बाहर जाने लगें उस समय हमको जता देना, सो राज-नन्दिनी अब देवीपूजन के लिये जा रही हैं, क्या आज्ञा है?

शि० (स्वगत) जरासंध के कथन से ज्ञात होता है, कि कृष्ण समान वीर्य्यशाली हम लोगों में से भी कोई नहीं है। फिर उन योधाओं का किया क्या हो सकता है, जो हम लोगों से सर्व प्रकार बलहीन हैं। जिस प्रचण्डवायु के वेग से बड़े २ प्रकाण्ड वृक्ष समूल नष्ट हो जाते हैं उसके सम्मुख एरण्ड की क्या गणना है। तथापि इस समय न्यायानुमोदित यही जान पड़ता

है कि राजनन्दिनी की रक्षा के लिये अपने कतिपय सामन्तों को नियुक्त और सन्नद्ध करूं । (प्रगट) द्वारपाल! हमारे सूरसामन्तों और योधाओं से जाकर कह दो कि वे राजनन्दिनी की रक्षा के लिये उनके साथ रहें ॥

द्वा०— जो आज्ञा ॥ (जाता है)

शि० (सकल सभास्थितजनों से) मित्रगण! आप लोगों ने परस्पर विवाद तो बहुत कुछ किया, पर यह न बताया कि ऐसे अवसर पर क्या कर्तव्य है ?

- शा० कर्तव्य क्या है? हमलोगों को शुद्धान्तःकरण से आपकी सहायता के लिये इस काल इस प्रकार परिकरबद्ध हो जाना योग्य है, जैसे देवासुर संग्राम समय सुरराज इन्द्र की सहायता के लिये भगवान विष्णु और कैलासपति शिव परिकरबद्ध हो जाते हैं।

दं०—केवल हमलोगों को ही परिकरबद्ध हो जाना उचित नहीं है, किन्तु समस्त सामन्तों और सूरमाओं को भी कृष्ण के आगमन के समाचार से अभिज्ञ करके सावधान कर देना योग्य है और सर्व आयुधों को भी ठीकठाक कर लेना उचित है, क्योंकि "सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ।"

रु०– (झुंझलाकर) आपलोगों को क्या हो गया है, जो

आपलोग एक क्षुद्र व्यक्ति के लिये इतना प्रयत्न करना चाहते हैं। क्या तमसमूह के नाश करने के लिये सूर्य्य कभी कुछ उपाय करके उदय होता है? अथवा रज कण की उद्दतता निवारण के लिये घन कभी चिन्तातुर बनता है? जिस काल मेरे बाण सर्प समान फुंकार कर रणभूमि में प्रवेश करेंगे. शत्रुओं की सेना बधिर हो जावेगी. उनके नेत्र बन्द हो जावेंगे. सहस्रश: कबन्ध रणस्थल में इधर उधर फिरते दृष्टिगोचर होंगे, भूत प्रेत पिशाच मांस मेद मज्जा खाकर प्रलय तक के लिये तृप्त हो जावेंगे योगिनियां खोपड़ियों द्वारा रुधिर पान करके आनन्द से पैर फैलाकर सो रहेंगी। युगान्तक भगवान शिव की मुण्डमाला जो आज तक अधूरी है पूरी हो जावेगी. और बड़े २ सूरमाओं का युद्ध का उमङ्ग जाता रहेगा।

छन्द।

जब बान और कमान ले रण मांहिं रिपु पर धाइहौं ।
अस सुभट को जेहि मारिकै नहिं भूमि माहिं लुठाइहौं ।
करि बिकल सारथि रथिन को छन मांहिं मान उतारिहौं।
अरि अति प्रबल अहि कांहिं मैं जग प्रबल जिमि उरगारिहौं।
उर छेदि भेदि अनेक को रणभूमि मांहिं सुवाइहौं ।
करि छिन्न भिन्न अपार रिपुदल चाव सकल नसाइहौं ।

पुर समर जिमि त्रिपुरारि तिमि रिपु सकल गर्व प्रहारिहौं।
पाकारिजिमिहियंपाककी तिमि रिपुहियहिं गहि फारिहौं॥
बहु कहब अनुचित होत याते अब कहत सकुचात हौं ।
पै करब आपहुँ लोग ऐसहिं यह अवसि पतियात हौं ॥

स लो०—शाबाश! हमलोग भी यही चाहते हैं । ऐसा कौन होगा जो उसके लिये असि ग्रहण करेगा, जिस के नाश की सम्भावना केवल कर प्रहार से है किन्तु यह विशेष सतर्कता का समय अवश्य जान पड़ता है।

ब० निस्सन्देह। किन्तु कोई चिन्ता नहीं। अब विवाह का समय समीप है यदि आपलोगों की आज्ञा हो तो मैं जाकर आवश्यक कार्य्यों का परिशोध करूँ?

स०लो० हां। आप जाइये, अब हमलोग भी उचित और आवश्यकीय कार्य्यों को करना चाहते हैं।

ब० बहुत अच्छा। (जाता है)

(यवनिकापतन)

सप्तमाङ्क ।

(स्थान देवी के मन्दिर का निकटवर्त्ती उद्यान)

(महारानी रुक्मिणी अपनी अनामा और अनाभिधाना प्रभृति सखियों के साथ राक्षसों की कोट में मत्तगजगति से मन्द २ जा रही हैं)

अ॰मा॰—सखी अनाभिधाने ! देख ! राजनन्दिनी की इस समय प्रेम की तरङ्गों में क्या गति हो रही है। यद्यपि वह चलने के लिये पैर आगे को डालती हैं पर वे पीछेही को पड़ते हैं । घूँघट की ओट से नेत्रों की गति रुकी हुई है, परन्तु जल ऊपर आये हुये मत्स्य की भांति कभी २ वे इधर उधर दृष्टि डालने में नहीं चूकते हैं · प्राणनाथ के संयोग सुखानुभव की आशा, और मात पितादि के बियोग भय और आशङ्का से सन्ध्या कालीन एवं प्रात.कालीयसरोज समान प्यारी का मुख कैसा प्रसन्न और मलीन हो रहा है । हृदय के अनन्त अभिलाष मयङ्क में से मरीचि समान वैसे बाहर निकले पड़ते हैं (इतस्ततः दृष्टिनिक्षेप)

अ॰ना॰—सखी ! राजनन्दिनी के हृदय की आकुलता का व्योरा तो तभी ज्ञात हो गया, जब उन्होंने पूजा समय

शिवप्रिया के अंगों में चन्दन लगाने के पलटे अपने अंगों में लगा लिया, और फूलों की माला उनके गले में डालने के बदले आप पहिन लिया।

श्री०८० - सखी! अब तो प्राणप्यारे से मिलने के लिये एक एक पल चतुर्युग समान जान पड़ता है। हृदय का भाव वैसाही हो रहा है जैसा उषाकाल में चकवी का होता है। नेत्र कहनेही में नहीं हैं, जो गति दूज के चाँद देखने के लिये संसार की होती है, उससे बढ़ कर इनकी दशा जीवनाधार के दर्शनों के लिये है। पर हाय! यह नहीं जान पड़ता कि प्रियतम के इतना विलम्ब करने का क्या कारण है?

अ०मा० - राजनन्दिनी! यदि वे आही जावेंगे तो क्या करेंगे? क्या इन सहस्रश: मेघनाद समकक्षी योधाओं के मध्य से तुमको ले जा सकेंगे?

श्री०८० - सखी! मृगराज को मृगों के झुण्ड में पैठकर क्या अपना भक्ष्य लेने में विलम्ब होता है।

अ०ना० - (दूर से देखकर) सखी अनामे! वह देख! वायु का निरादर करते, स्वबेग सम्मुख दिनेसरथ की गति निंदनीय बनाते, विजय की ध्वजा उड़ाते, घंट घटिध्वनि से दिङ्मण्डल को पूरित करते, किसका रथ आ रहा है?

अ०मा०—सखी ! इस विषय को राजनन्दिनी से पूछ। क्योंकि प्रियतम के आने का समय प्यारी भली भांति जानती है। सूर्य्य के आगमन के चिन्हों का नलिनी अच्छी तरह पहचानती है।

श्रीरु०—सखी ! परीक्षा लेने की कौन आवश्यकता है। प्राणनाथ त्याग और कौन हो सकता है।

अ०मा०—यह कैसे ?

श्रीरु०—मेरा मन कहे देता है, क्योंकि कोकिला के हृदय में आनन्द का संचार बसंतागम बिना कब हुआ है ?

अ०मा०—कौन जाने ! बसंत का प्रिय मित्र कामही तुमारे धर्म्म की परीक्षा लेने के लिये न आ रहा हो।

अ०ना०—क्या वह नहुष शची, और धर्म बृन्दा की कथा नहीं जानता जो महारानी सी पतिव्रता के समीप आने का साहस करेगा।

अ०मा०—सत्य है ! (रथ की ओर देखती है) सखी ! रथ अब समीप आ गया, इस कारण हृदय में युगपत् आनन्द और खेद का संचार होने से मेरी गति साँप छछूंदर की सी हो रही है।

(रथ पर चढ़े भगवान श्रीकृष्ण का प्रवेश)

अ०ना०—(भगवान की छबि देखकर) हाय ! हाय !! इन नेत्रों से न ऐसा स्वरूप कभी देखा न कानों से

सुना। भगवान का अंग २ कैसा सुडौल है, मुख की कैसी शोभा है, पुष्प में से सरसरंग समान भगवान के प्रतिअवयवों से कैसा माधुर्य्य झलक रहा है। सिर के मुकुट कानों के कुण्डल की कैसी छटा है! घुघुरारी अलकें मन को कैसा खींचे लेती हैं! क्या अनंग जो अनंग है भगवान श्रीकृष्ण की उपमा के योग्य निश्चित हो सकता है? क्या रमाहृदयवल्लभ जिन की चार बाहें हैं मनमोहन के स्वरूप समान कहे जा सकते हैं? क्या भगवान स्वयंभू जिन को चार मुख हैं, इन कुलभूषण के सन्मुख पटतर पाने के लिये खड़े हो सकते हैं? क्या उमाप्राणनाथ भगवान शिव जिन के सर्पादि आभूषण हैं यदुवंशनायक की समता पा सकते हैं? कदापि नहीं? उन में ऐसी कोमलता, ऐसा माधुर्य्य, ऐसा सौंदर्य्य कहां? यह अलौकिक मनोहारिणी शक्ति कहां?

प्र मा॰ सखी! सत्य है! भगवान की तिरछी चितवन, मंद मुसुकान, कमलदल सी आँखे, कीर सी नासिका, कपोतवत ग्रीवा, किस को नहीं ठगती, उनका यह लोकमोहन स्वरूप किस को नहीं भाता! अहा! सुकुमारता तो फिसली पड़ती है! रूप उछला आता है! हाय! बिधना ने ऐसा सुन्दर रूप देखने के लिये

अनन्त आँखें क्यों नहीं बनायीं! और जो केवल दोही आँखें बनाईं तो उन पर पलक क्यों लगाया!

सवैया।

नहिं हेरि कै नैनन धीर अहै वह साँवरो रूप लख्यो ई चहैं। लखि कै मुसुकान अनूपम को छन प्रानहूं पायो न चैन लहैं। हरि औध न है बस मैं हिय आपनो कौन पै याकी बिथा को कहैं। तन की गति जो है अरी सजनी कहु कौन उपाय कै ताको सहैं।

श्रीह०—(स्वगत) अहा! सखियों के प्राणनाथ का स्वरूप इस प्रकार बर्णन करने से मेरे हृदय का कैसा भाव हो गया, जो प्रेम सूक्ष्म रूप से हृदय स्थल में बिराजमान था वह अब ऊषा से वायु समान कैसा बढ़ गया, हृदयवल्लभ से मिलने की अभिलाषा देखते ही देखते मत्स्यावतार की भाँति कैसी कई गुनी हो गई। जिन नेत्रों ने प्रियतम की दर्शनाशा को इतने काल तक सम्बरण कर रक्खा था, वह अब जीवनाधार का स्वरूप देखने के लिये खंजन समान कितने चञ्चल हो रहे हैं। जिस हृदय ने इतने दिवस तक धैर्य्य का अवलम्बन करके अपना धर्म्म निबाहा था वह अब प्राण प्यारे से मिलने के लिये बुभुक्षित व्यक्ति की भाँति कैसा आकुल हो रहा है। किन्तु कोई

चिन्ता नहीं, प्यासे के लिये सरोवर पास है, भूखे के लिये समस्त व्यञ्जन आगे रक्खा है। फिर अब बिलम्ब ही क्या है? प्राप्त वस्तु के लिये मनोवेदना कैसी?

(महारानी नेत्र उठाकर एक बार भगवान की छवि अवलोकनोपरान्त घूंघट डाल लेती हैं, सामन्तगन उनका अलौकिक सौंदर्य देखकर जड़वत् हो जाते हैं, अस्त्र शस्त्र हाथों से छूट पड़ता है)।

श्रीक०—अहा! असमय अचाञ्चक भगवान रोहिणीनाथ के प्रकाशित होने का क्या कारण था! छि: क्या निशाकर का प्रकाश ऐसा हो सकता है जो भगवान दिवाकर के प्रकाश को भी अपने आपसन्मुख फीका बना देवे? कदापि नहीं। फिर क्या कारण है कि जिस काल वह आप प्रकटित हुआ दिनमणि का प्रकाश मंद पड़ गया। आहा! समझ गया, वह प्राणप्यारी के मुख मयंक का अलौकिक प्रकाश था, जिसका यह लोकोत्तर चरित्र था, और जिस से मेरी हृत्कलिका का तत्काल विकाश हो गया। काले काले राचसों की कोट में मत्त कुञ्जरवरगमन से इस ओर आती हुई प्राणाधिका की कैसी शोभा है, कैसा अद्भुत सौन्दर्य है! कैसा अपूर्व लावण्य है! क्या बूढ़े विधाता से कभी ऐसा सुन्दर स्वरूप रचा गया होगा, ना! ऐसा

जान पड़ता है कि भगवान कुसुमायुध ने अपनी सदोम्भारमणी रति को लज्जित करने के लिये अपने कोमल हाथों से इस अनोखे स्वरूप को बनाया है। प्यारी के उन्नत भ्रू, रसीले नैन, सहज सौन्दर्य्यनिवास आनन, कैसे स्पृहणीय हैं! कैसे मनोरञ्जक हैं! प्रिया ने मेरी ओर केवल स्वाभाविक दृष्टिपात किया है, पर क्या मेरा आनन्द रजनीपति के उस काल के उस प्रमोद से कुछ कम है, जब भगवान रमानाथ ने वृन्दारकवृन्द को अमिय पान कराने उपरान्त उसका घड़ा उन पर ढाल दिया था, किन्तु यह भी भ्रम है, क्योंकि—

पद।

प्रिया छवि केवल मोहि न भावै।
विहग कीट पसुहूँ लखि तियछबि हिय प्रमोद उपजावै॥
मानि पद्मिनी चञ्चरीककुल मोर तड़ित सम जानी।
चन्दन सम सुबास तन को अति अहिकुल कहँ सुखदानी॥
मुखमयङ्क सम लखि चकोर अरु मृगगन मोद बढ़ावैं।
प्रिया सिया इक रूप जानि जिय साखा मृग सिर नावैं॥
कमला गुनि कुञ्जर सुख पावत हरि गिरिजा अनुमानी।
हरीऔध प्रमुदित मरालकुल रहत भारती मानी॥

अ०मा०—(रुक्मिणी को लज्जिता देखकर) राजनन्दिनी! अब अपने प्राणनाथ से अशङ्क मिलने के परिवर्त्तन में तुमारा सङ्कोच करना ऐसा है, जैसा किसी को भोजन

का निमन्त्रण देकर भूखा रखना, और समय पर उस का ध्यान बिल्कुल भूल जाना, राजकन्यके ! अब तुम को योग्य है कि तुम लज्जा को तिलाञ्जलि देकर अपने प्रियतम से ऐसे मिल जाओ, जैसे लक्ष्मी भगवान विष्णु से और भगवती भागीरथी अकूपार से मिली हैं।

अ० ना०- सत्य है ! यद्यपि हमलोगों का हृदय तुमारे वियोग की असह्यता से उद्विग्न हो रहा है शोकोच्छ्वास के प्राबल्य से कण्ठरुद्ध प्राय: होने से वाक्य स्फुरण असम्भव हो गया है। तथापि अपनी उद्विग्नतानिवारण के लिये हम तुमको इस अवसर पर चूक जाने की सम्मति कदापि नहीं देगी। अब यह समय ऐसाही है कि तुम अपने जीवनाधार से वाक्य गिरा, जल बीचि, समान मिल जाओ। नहीं तो अवसर पर चूक जाने से पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगेगा।

शौरु०—सत्य है ! (स्वगत) प्राणनाथ ! यद्यपि यह लोक प्रसिद्ध विषय है कि जो वस्तु बिना परिश्रम हस्तगत हो जाती है, उसका मान यथोचित दृष्टि में नहीं होता, प्रतिष्ठा भी उसकी सामान्य होती है, तथापि मैंने इसका अणु मात्र भी ध्यान नहीं किया, और इस क्षणस्थायी शरीर को विधिनिषेध के चरणों की सेवा के लिये आपको अर्पण किया, अब इसका मान, स-

श्रम, आदर सत्कार केवल आपकी बिबेचना पर निर्भर है, यदि दयासागर स्वपवित्र गृहस्थ दासिका समान भी मुझ चरणाश्रिता का सम्मान करेंगे तो मैं अपने जीवन को चरितार्थ समझूंगी । इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस काल कौजनी चित सङ्कोच मध्य में पड़ कर कुछ बाधक हुआ चाहता था. किन्तु आनन्द का विषय है कि आदरणीया सखियों के सदोपदेश द्वारा उत्तेजित प्रेम के सन्मुख वह कृतकार्य्य न हो सका । जीवन सर्वस्व ! लीजे अब यह दासी तन मन से आप पर न्यौछावर होती है, इसके मान अपमान चक्र की डोरी आपके करकमलों में सादर समर्पित है (महा· राणी रुक्मिणी भगवान से मिलने के लिये हाथ बढ़ाती हैं, भगवान रथ को बढ़ा बांयें हाथ से राजनन्दिनी का हाथ पकड़ रथ पर बिठा रथ को द्वारका की ओर हाँक देते हैं)

(जवनिका पतन)

अष्टमाङ्क।

(स्थान जनवासे का बाहरी प्रान्त)

(बहुत से सूरमें खड़े और शिशुपाल, शाल्व, दन्तवक्र, जरासन्ध इत्यादि बहुत से वीर बैठे हैं)

(एक दूत का प्रवेश)

दू०—(हाथ जोड़कर काँपते हुये) महाराज। बड़ा अनर्थ हुआ! भगवान श्रीकृष्ण राजनन्दिनी को आपकी सेना के मध्य से हर ले गये, हमलोगों ने किसी ने न जाना, सारी सेना चित्र की भांति खड़ी देखतीही रही।

शि०—(क्रोध से) जैसे तुच्छ मृग पराक्रान्त मृगराज से शत्रुता करे, क्षुद्र पक्षी प्रचण्ड उरगारि से बैर बिसाहै, और लघु मीन बड़े ग्राह को आँख दिखावे, उसी प्रकार मृत्युमुखपतित कृष्ण हमसे प्रबल क्षत्रियों से बैर करके कुशल चाहता है! कुछ चिन्ता नहीं, दूत तुम सेनावालों से जाकर कह दो कि वे संग्राम के लिये तत्काल सन्नद्ध हों।

दू०—जो आज्ञा! (जाता है)

ज०—सत्य है। जैसे नादश्रवणलिप्सा से मृग अपने प्राण से पराङ्मुख होता है, प्रमत्त द्विरदस्वरूप दर्शनाकांक्षी होकर गर्त्त में पतित होता है, सरस सुगन्ध को आ-

कांक्षा से षट्पद्कमलकोष में बद्ध होता है, धवल बालु का राशि को जल समझ भ्रम आपतित कुरङ्ग अपना प्राण गँवाता है, उसी प्रकार राजकन्या रुक्मिणी का इच्छुक होकर संग्रामीय निबिड़ जाल में फँस कृष्ण अपने जीवन से उदासीन हुआ चाहता है "कालस्य कुटिला गतिः"

शि०—(दम्भ से) मित्रवर ! क्या उसने मेरे पराक्रम को नहीं सुना है, क्या वह मेरी अलौकिक रणक्षमता को नहीं जानता, जो ऐसा अन्यायानुमोदित कर्म करने के लिये बाध्य हुआ ! आज मेरे पन्नग समकक्षी बाण उसके हृद्विवर में प्रवेश करके उसका उष्ण रुधिर पान करेंगे। मेरे प्रचण्ड दोर्दण्ड जिनकी प्रचण्डता पाकारि इन्द्र भली भांति जानता है उसका प्रबल युद्धोन्माद क्षणभर में निवारण कर देंगे । जिस काल मेरा वज्र मानमर्दक चक्र छुटेगा, मैनाक की भांति यदि वह अपारोदधि की शरण ग्रहण करेगा, तथापि त्राण न पा सकेगा, यह मेरी शाणित करवाल जिसकी प्रज्वाल सम्मुख नन्दन की शोभा क्षीण है, जब उसपर टूटेगी दशमुख के भुज और मुख की भांति उसके प्रत्येक अंगों का अनेक खण्ड कर देने में कदापि विलम्ब न करेगी ।

सवैया।

कोप कै लै जब दण्ड प्रचण्ड उदण्ड ह्वै शत्रु के सामुहे ऐहौं। ताको प्रचारि कै मारि कै डारि कै होय बिदारि कै मैं सुख पैहौं॥ छेदि अनेकन को हरिश्रौध कितेकन को कच सों गहि लैहौं। सेस सुरेस महेस गनेसहुँ आइ मिले नहिं संकित ह्वै हौं॥

शा०—प्रिय मित्र! हम क्षत्रियों को रण से विशेष इस विश्व संसार में और कौन प्रिय वस्तु है यों तो इस नश्वर जगत में जो उत्पन्न हुआ है एक दिवस अवश्य मरेगा, किन्तु योगाभ्यास से और रणभूमि में करवाल ग्रहण करके मरना बिरलेही को प्राप्त होता है। क्या यह थोड़े पुण्य का फल है कि क्षत्रियबंशधर यदि रणस्थल में विजय हस्तगत करता है तो संसार में अक्षयकीर्ति और बिपुल ऐश्वर्य्य का भागी बनता है। और यदि अकातर चित्त से स्वबीरत्वध्वज आरोपण करते हुये रणशय्या पर शयन करता है तो योगीजन बाँछ-नीय पवित्र स्वर्गसुख का अधिकारी होता है। अहा! धन्य है! जगतपावन क्षत्रिय धर्म्म!!!

दन्त०—(दाँत पीसकर) आज आपलोग मेरा युद्ध देखेंगे, अब तक युद्ध काल उपस्थित नहीं था लोग मुझे बढ़ बोला जानकर मेरा उपहास करते थे, किन्तु आज मैं

ऐसा युद्ध करूँगा, कि भगवान शिव की समाधि भङ्ग हो जावेगी, दिग्गज चिल्लाने लगेंगे। पृथ्वी थर्राने लगेगी। शेषनाग दहल जावेंगे। देवते चमत्कृत होंगे। भूतेश्वर की मुण्डमाल पूर्ण हो जावेगी। योगिनियां रुधिर पान से सन्तृप्त होकर नर्तन करेंगी। कबन्ध युद्ध करते दृष्टिगत होंगे। रुधिर की सरिता प्रवाहित होगी। काक काक मांस खाकर शान्ति लाभ करेंगे।

कवित्त।

करिकै प्रचण्ड कोप त्यागि हिय सङ्क आज अरिदल टारि फारि पल मैं बिडारि हौं। करि घमसान सब कसक निकासि लैहों सूर सरदारहूँ समर मैं प्रचारि हौं॥ औध-हरि अरि के उमग हिय जेतो अहै कहत पुकारि ताको पल मैं निकारि हौं। बढ़ि सर झारिहौं अनेकन को मारि हौं प्रबीर मद टारिहौं न भूलि रन हारिहौं॥

जरा०—मैं क्या कहूँ, यद्यपि अपने मुख से अपनी प्रशंसा उचित नहीं होती, तथापि यह अवसर कुछ कहनेही का है, और कुछ कहनाही क्या! मैं थाप दृष्टि से आज प्रलय समान पृथ्वी आकाश को एक कर दूँगा! मेरे तीक्ष्ण शर निपातित एवं जर्जरित वीरों के शोणित से शैल काननकुन्तला धरणीकर्दमित हो जावेगी!

पर्वतस्थ प्राचीन काक भुसुण्ड ने शुम्भ एवं महिषासुर के युद्ध में पर्वत के सिरोदेश से और प्रचण्ड पराक्रम-शाली रावण के संग्राम समय पर्वत के निम्न भाग में अवतरण करके रुधिर पान किया था, किन्तु आज के मेरे युद्ध में यदि वे उस पर्वत के ऊपर एक और उन्नत वृक्ष पर आ बैठेंगे तो वहीं रक्तपान करके तृप्त हो जावेंगे, कर्तित एवं विद्ध वीरों की भुजा, सिर और अपर अंगों की राशि से पृथ्वी पर एक द्वितीय हिमा-चल दृष्टिगोचर होगा। अनन्त गगन में टीड़ीदल स दृश बाण संक्रान्त इतने सिर उड़ते देखने में आवेंगे कि जिनके घनीभूत होने से आज का समुज्ज्वल दिवस तमसाच्छन्न भाद्रपद की काली रात बन जावेगा।

कवित्त।

दौरहु दिगन्त दाबि वीरबलशाली आज करिकै अपार कोप अरिहं अघाय देहु। दलिमलि मारि चाव चूर करि सूरन को आन बान आपनेई हाथन नसाय देहु॥ औध-हरि बढ़ि बढ़ि बेधि बेधि बीरन को बहुत कहां लौं कहौं बिरद बुझाय देहु। डाँटि कर दहु दूर दीहदाप द्रोहिन को गरजि गुमानिन को गरब गँवाय देहु॥

सब बो०—पृथ्वीनाथ! हम सबों पर आपका बड़ा ऋण है! सो आज उस ऋण के परिशोध करने का, अपना पौरुष प्रगट करने का, संसार में अक्षयकीर्त्ति

लाभ करने का। स्पृहणीय स्वर्गसुख हस्तगत करने का, उन्नतस्तनी अप्सराओं के प्रमुग्ध कर कटाक्ष अवलोकन करने का, अवसर उपस्थित हुआ है। जब तक हम लोगों के एक अंग में भी प्राण रहेगा, शरीर की एक सिरा में भी रुधिर प्रवाहित होगा, हमलोग शत्रु को सांस न लेने देंगे। आप देखेंगे कि हमलोगों के प्रबल आक्रमण से शत्रु सेना क्षणभर में ऐसे बिलाय जावेगी, जैसे जलबुब्दुद। हमलोग दुराचार रावण की सेना समान वाक्सूर और कापुरुष नहीं हैं, किन्तु पराक्रान्त शुंभ एवं महिषासुर की ओजस्विनीध्वजिनी सदृश युद्ध कुशल और रणदुर्मद हैं।

शि०—शाबाश! बहादुरो! शाबाश!! धन्य हो! क्यों न हो! जब तुमलोग ऐसे हो तभी तो ऐसे लोमहर्षण व्यापार में पदार्पण करने के लिये कटिबद्ध हो, नहीं तो अपना प्राण किसको नहीं प्यारा है। किन्तु सूरमाओं की यह रीति केवल आजही ऐसी नहीं है, सदा से इस्की पोषकता इसी प्रकार होती आई है। देवासुर संग्राम में बिकट वृत्रासुर की देवराज ने दोनों भुजायें काट दीं, पर क्या इससे वह भीत हुआ, अणु मात्र नहीं, वरन द्विगुणदर्प से लड़ताही रहा। उद्धत रावण का सिर और भुजमूल घोर धुरन्धर भगवान

रामचन्द्र काटतेही जाते थे, पर इससे क्या उसका व-
खाड़भंग होता था ? नहीं ! वह घनुबाण प्रबल वेग
से अधिक होता जाता था।

शा०—अरे रणभीरु ! कायरशिरोरत्न ! तियचोर ! दुरा-
चार कृष्ण ! यद्यपि तेरे दुष्कर्म्म औ बञ्चकता से इस
काल हमलोगों का हृदय कुम्हार के आवाँ की भांति
दग्ध हो रहा है। तथापि आपत्ति में पड़ा हुआ मृ-
गेन्द्र क्षुद्र शृगाल के बिनाश के लिये बहुत है। यदि
आज तू रणभूमि में मायावी रावण समान अनेक स्व-
रूप धारण करके प्रगट होगा, प्रबल महिषासुर की
भांति नाना प्रकार की मूर्ति बनकर दृष्टिगोचर होगा,
दनुबंश जातों का अनुकरण करके कभी अन्तर्ध्यान
कभी प्रगट होकर युद्ध करेगा, पक्षी बनकर नभोमण्डल
को, जलचर स्वरूपधारण करके अगाध उदधि की,
सर्प होकर अवकाशवती धरणी की, बन्यपशु स्वरूप से
अन्धकाराच्छन्न गिरिकन्दर को, शरण लेगा, तथापि
मेरे शाणित शरों से त्राण न पा सकेगा।

(एक दूत का प्रवेश)

दू०—महाराज ! आपकी सम्पूर्ण सेना युद्ध के लिये तैयार
खड़ी है और यादवों की सेना डंके बजाती, झण्डे
उड़ाती, तूर्य्यनाद करती, उद्वेलित समुद्र समान कूल-
वर्ती पदार्थों को बिनाशती, द्वारकाभिमुखयात्रा कर
रही है।

अ०—(दर्प से) तो चलो अब हमलोग भी अगस्त की वृत्ति धारण करके उसके अकालोद्भूत अभिमान का निवारण करें ?

आ०—(खड़े होकर उच्चस्वर से)

छन्द ।

अबै सेहथो लै सबै बीर धाओ । रचो व्यूह सेना सजाओ सजाओ ॥ बली बीर के मान को तोरि डारो । बड़े बैरि के हीय को फारि डारो ॥ उड़ाओ पताके नगाड़े बजाओ । महादाप कै मेदिनी को कँपाओ ॥ घने सूर सामन्त को धालि धाओ । चढ़ो चाव तिनको मिटाओ मिटाओ ॥ न छोड़ो कबों जाहि पाओ प्रहारो । पुकारो पुकारो प्रचारो पधारो ॥ कमानेन को बेग टागो टगाओ । छुरी से हथी तेग गोला चलाओ ॥ गदा मारिकै गर्ब बैरीन ढाओ । नसाओ फँसाओ कँपाओ गिराओ ॥ करौ क्रुद्ध को कोप कै कै बिदारो । जहां जाहि पाओ तहाँ ताहि मारो ॥

सब०—(मिलकर तुमुल शब्द से)

जहां जाहि पाओ तहां ताहि मारो ।
जहां जाहि पाओ तहां ताहि मारो ॥

(कहते, हथियार निकालकर कूदते, ललकारते, कोलाहल करते घूम कर नेपथ्य में हो जाते हैं)

(जवनिका पतन होती है)

नवमाङ्क ।

(स्थान रणभूमि का बहिर्प्रान्त)

(भगवान श्रीकृष्ण, सारथी एवं महारानी रुक्मिणी सहित एक रथ विराजमान)

श्रीकृ०—(नेपथ्य की ओर देखकर) सारथी ! देखो! पद्मव्यूह रचकर खडी यादवों की सेना को बली शाल्वादि महारथियों को आगे किये हुये शङ्खध्वनि करती शिशुपाल की सेना ने किस प्रकार आक्रमण किया है!

सा०—महाराज ! कुछ चिन्ता नहीं ! बिकट सिंहनाद से शत्रुओं का हृदय कम्पित करके यादवों की सेना ने भी उनकी अव्याहत गति का अवरोध कर दिया ।

श्रीकृ०—सत्य है ! अब युद्ध आरम्भ होने में भी अनतिविलम्ब है ।

सा०—अनतिविलम्ब क्या ! विलम्ब हैही नहीं ।

(नेपथ्य में सिन्दूरा गान प्रारम्भ)

राग सिन्दूरा ।

कोप धारि असि प्रहारि लरत बीर भारो। चं चं चमकत कृपान, फं फं फुंकरत बान, तं तं तंरकत मान, वैरिन मदगारी ॥ घं घं घायल अपार, गं गं गं गिरत हार, कं

कं करिके पुकार, कायर भयकारी । बं बं बहकत प्रबीर धं धं धनु धुनत धीर, भंभंभं भिरत भीर, बरकत दै नारी॥

श्रीकृ०—सारथी तुमने बहुत ठीक कहा, सिन्दूरा गान के साथही रणबाद्य बजने लगा, बारम्बार तूर्य्यनाद होने लगा, अग्रज ने शिशुपाल को ललकारा, सात्विकी ने शाल्व के साथ युद्ध करना प्रारम्भ किया, कृतबर्मा ने दन्तवक्र को लक्ष्य बनाया, और यादवों की समस्त सेना शिशुपाल की सेना पर टूट पड़ी।

सा०—महाराज! इस काल बड़ा घोर युद्ध हो रहा है, सामन्तों की गरज, रणवाद्यों का भयङ्कर शब्द, शस्त्रास्त्रों की झनत्कार, तूर्य्य का उत्तेजक निनादही, चारो ओर श्रुत होता है।

श्रीकृ०—सारथी! देखो! अग्रज के कठोर मूसलाघात से आहत होकर रुधिर वमन करता हुआ शिशुपाल पृथ्वी पर गिर पड़ा, सात्विकी की अनवरत बाणवर्षा से व्याकुल होकर प्रचण्ड शाल्व ने उनके धन्वा को तो काट दिया, किन्तु करवाल के कठिन प्रहार से त्राण न पा सका, क्षतविक्षत होकर मूर्छित हो गया, कृत बर्मा ने भी अपने अमोघ पराक्रम से दन्तवक्र का मान चूर्णविचूर्ण कर दिया। आहा! यादवों की सेना ने भी प्रचण्ड आक्रमण करके शिशुपाल की सेना में

से बहुतों को काट डाला। सूत! क्या शिशुपाल की सेना अब पलायित होने का उपक्रम कर रही है?

सा०—महाराज! ज्ञात तो ऐसाही होता है।

श्रीकृ०—सूत! देखो! जरासन्ध की तेजस्विता देखो! शिशुपाल की सेना रणभङ्ग देकर पलायित हुआही चाहती थी। किन्तु अपनी अचिर बाण वर्षा से यादव दल को सम्कुचित करके उसने उनके उत्साह को द्विगुण कर दिया। अब किस ओजस्विता के साथ उसने फिर यादवीय सेना को आक्रमण किया है।

(नेपथ्य में)

अरे! युद्धदुर्मद जरासन्ध यदि कुछ पौरुष रखता है तो मेरे सम्मुख हो, वृथा अपने अप्रतियोगी यादव सैन्य के साथ क्यों बल प्रकाश करता है। यदि अ जस्वी मृगेन्द्र ने क्षुद्र मृगसमूह को विजित करही लिया तो उसकी कौन प्रशंसा है?

सा०—महाराज! क्या यह ओजस्वी वाक्य महात्मा बलराम का है?

श्रीकृ०—हां देखते नहीं किस दर्प के साथ जरासन्ध ने उनको आक्रमण किया है।

सा०—निस्सन्देह! इन दोनों पराक्रान्त वीरों की प्रतिद्वंदिता देखने योग्य है।

श्रीकृ०—अहा! कैसा घोर संग्राम हो रहा है। रण धुर-न्धर जरासन्ध के बाणों से सारी संग्रामभूमि पूर्ण हो गई! अग्रज महावीर्य्य बलराम के कठोर एवं अनिवार्य्य मूसलप्रहार से अनन्त वीर भग्नमस्तक हो गये। मृतकों के शरीर का ढेर लग गया, रुधिर की नदी बह निकली। किसी वीर का कबन्ध कर में करवाल ग्रहण लिये सन्मुख होता है, कोई उसे खड्गप्रहार करके द्विधा कर देता है। कोई रणोन्मत्त दोनों हाथों के कटने और बिरथ होने पर मुखव्यादनपूर्वक अपने प्रतियोगी को आत्मग्रास्त कर लेना चाहता है, किन्तु वह उसके मुख को बाणों से भरकर उसका वहीं निपात करता है। कहीं सारथी रथी का सीस हाथ में लिये रोदन करता है! कहीं कोई वीर मूर्छित हो पृथ्वी में गिरता है। घायल घूमते हैं! कायर भागने का उपक्रम करते हैं! अर्द्धमृतकों का आर्त-नाद कलेजा कम्पित करता है! छिन्नमस्तक और धरातलपतित रुण्ड त्रास को द्विगुण कर देता है। धरती रक्तवर्ण हो गई! आकाश बाणों से घिर गया! वीरों का उत्कट नाद दिशाओं में भर गया। मांसभक्षी जीव इतस्ततः भ्रमण कर रहे हैं! लोहू, मांस, मज्जा, मेद पड़े दृष्टि आते हैं! रुधिराक्त शस्त्रास्त्र बिखरे पड़े हैं!

शोणितासुत आभूषण जहां तहां गिरे हैं। दुर्दान्त जरासन्ध के अपूर्व पराक्रम प्रकाश से आहत शिशुपाल की सेना बढ़ आई थी, पर पूजनीय अग्रज के मूसल-प्रहार और विजयी कृतवर्मा और सूर सात्विको के अभेद्य शरवर्षण से फिर पीछे हट गई।

छन्द।

तागिड़दं तीरं छागिड़दं छुट्टे। बागिड़दं बीरं टागिड़दं टुट्टे॥ कागिड़दं कोपे जागिड़दं ज्वानं। नागिड़दं नासे मागिड़दं मान॥ गागिड़दं गाजे खागिड़दं खेत। भागिड़दं भूत पागिड़दं प्रेतं॥ चागिड़दं चोपे सागिड़दं सूरं। भागिड़दं भाजे कागिड़दं कूरं॥ बागिड़दं बाजी ढागिड़दं ढोलं। भागिड़दं भाजी गागिड़दं गोलं॥ घागिड़दं घोड़े हागिड़दं हाथी। आगिड़दं आजे सागिड़दं साथी॥ मागिड़दं मारे दागिड़दं दारे। जागिड़दं जोधे सागिड़दं सारे॥ दागिड़दं देखी यागिड़दं युद्धं। बागिड़दं बीर कागिड़दं क्रुद्धं॥

सा०—महाराज! यह देखिये। घोर संग्राम करने के पश्चात् वीर्य्यवान श्रीबलराम के मूसलप्रहार से भग्नमस्तक हो रणदुर्मद जरासन्ध पृथ्वी पर गिर पड़ा।

(नेपथ्य में सिन्दूरा गान समाप्त होता है)

श्रीकृ०—(प्रसन्नता से) सारथी! केवल इतनाही आनन्द का विषय नहीं है। जरासन्ध को भूमिपतन होते देख

कर शिशुपाल की समस्त सेना छत्रभङ्ग देकर पलायित हो रही है और उसके साथही शिशुपाल और शाल्वादि भी पलायन करते दृष्टिगत होते हैं।

सा०—सत्य है! पृथ्वी में ऐसा कौन पराक्रमी है जो आपके और महात्मा श्रीबलराम के सम्मुख कुछ काल पर्यन्त रणाङ्गण में ठहर सके।

श्रीकृ०—सारथी! अब तो रणभूमि में विपक्षीदल का एक मनुष्य भी दृष्टिगत नहीं होता।

सा०—महाराज! दृष्टिगत कैसे हो? किसको अपना प्राण भारी पड़ा है जिन्होंने मूर्खता की उन्होंही ने की।

(नेपथ्य में घोर कोलाहल औ तूर्यनाद)

श्रीकृ०— सारथी! फिर यह कोलाहल कैसा?

सा० (नेपथ्य की ओर मनोनिवेश के साथ देखकर) महाराज! जान पड़ता है कि एक नवीन सेना ने कोलाहल और तूर्यनाद करती आकर यादवों की सेना को फिर आक्रमण किया है।

श्रीकृ०—सत्य है! यह सेना राजकुमार रुक्म की है, क्योंकि यह देखो अविरल बाणवृष्टि करते हुआ रुक्म हमारी ओर बढ़ा आता है।

सा०—महाराज! आप भी सावधान हो जावें।

(रथस्थ, बाणवृष्टि करते रुक्म का प्रवेश)

रु०—(क्रोध से) अरे रणभीरु। कायरशिरोमणि! कुल पांसन कृष्ण! तूने अपने को क्या समझ रक्खा है, दो चार क्षुद्र राक्षसों को छल से मार लेने के कारण तू वीर नहीं हो सक्ता। तेरी कौटिल्यमयी दुस्साहसिकता वीरता में परिगणित नहीं हो सकती। तूने कतिपय अल्प पराक्रम दानवों को क्या जीत लिया अपने को अजर अमर समझ लिया? किन्तु स्मरण रख कि तुझ को आजतक किसी क्षत्री से काम नहीं पडा है। देख! आज मेरी अविराम बाणबर्षा से तेरी वही गति होगी जो जलवर्षण से एक क्षुद्र रजकण पिण्ड की होती है (बाणवृष्टि)

श्रीकृ०—अरे वाकसूर। गजभुक्तकपित्थ समान सारशून्य। क्षत्रियकुलनिशाकरकलङ्क! क्या स्वान के शब्द करने पर मृगेन्द्र कभी भ्रक्षेप करता है, अथवा मत्तद्विरद के गरजने पर वह कभी रोषाविष्ट होता है! तुझ ऐसे पामर पतङ्गों के संहार के लिये मेरी करवाल की ज्वाला बहुत है। और मेरे पवन बाणप्रहार सन्मुख तेरी बाणबर्षा तो ठहरही नहीं सकती (धन्वा-बाणसन्धान और शरजालभेदन)

रु०—(गर्जकर) सत्य है 'बिनाशकाले बिपरीतबुद्धिः' जैसे मृत्युग्रस्त मत्स्य बड़िशग्रहण करके स्वतः अपना नाश करता है उसी प्रकार रुक्मिणीहरण करके तूने अपने को कालकवलित किया है और प्रचण्ड मृत्यु के शीर्षस्थ होने से इसका ज्ञान नहीं है कि मैं क्या कहता हूँ। अरे नीच! लोहे की आँच सहने को क्षत्रीहो को ईश्वर ने रचा है. गोपजातों को नहीं (पुन: शरवृष्टि)

श्रीकृ०—रे नीच। मिथ्याभिमानी! पांमर! कायरों समान क्या वृथा प्रलाप करता है, कुछ काल में आपही ज्ञात हो जावेगा कि लोहे को आँच सहनेवाला क्षत्री कौन है! मेडकों सदृश अधिक टर्रटर्र करने से क्या लाभ है (पुनर्शरजाल भेदन)

रु०—अरे कपटी! कटुभाषी! बाचाल! तेरे शस्त्रों की शोभा तभी तक थी जब तक मेरे तीक्ष्ण बाणों से उस को काम नहीं पडा था. देख आज इन बाणों के प्रहार से तेरे अंगों को विदीर्ण करके तेरे मांस से काकों और शृगालों को तृप्त कर देता हूँ, और तेरा सर्व रणोन्माद ऐसे उतार देता हूँ जैसे लक्ष्मणानुज शत्रुघ्न के बाणों ने लवणका, भगवान भूतनाथ के शरसमूहों ने त्रिपुरका, और पराक्रान्त पुरन्दर के अमोघ वज्र ने पाक का गर्व दूर कर दिया था (पुनर्शरवृष्टि)

श्रीकृ० - दुष्ट ! बाक्‌वीर ! समरयज्ञ पशु रुक्म ! क्या वृथा प्रलाप करता है ! जैसे वर्षाकाल के अनन्त क्षुद्र कीटों का प्रादुर्भाव तभी तक रहता है जब तक ओजस्वी शीत विनाशक शरदर्तु का विकाश नहीं होता, उसी प्रकार तेरे इन अनन्त शरसमूहों की दिगन्त व्यापिता तभी तक है जब तक वास्तव में मैं तेरे शरप्रहार रोकने के लिये कटिवद्ध नहीं होता, जिस काल ऐसा होगा तू शरप्रहार करना उस प्रकार भूल जावैगा, जैसे प्रसव होतेही बालक गर्भ की सकल बातें भूल जाता है अच्छा सम्हाल! (शरनिक्षेप और रथ, सारथी, अश्व, धनुकाविनाश)

रु० —(खिजलाकर) पापिष्ठ ! तिष्ट ! तिष्ठ ! अभी तलवार मारकर तुझे दो टुकड़े कर देता हूँ (पैदल दौड़कर असिप्रहार)

श्रीकृ० —(ढाल पर तलवार रोककर) बस ! हो चुका ! देखना अब मेरी बारी है (रुक्म को पकड़ तलवार मारा चाहते हैं)

श्रीरु०—(भगवान के चरणों पर गिरकर) कृपासिन्धो ! क्षमा कीजिये ! क्षमा कीजिये ! क्या जन्मान्ध कभी अंशुमाली सूर्य के गुण को जान सकता है, जब तक उसको सुलोचन न मिले, उसी प्रकार यह मदान्ध क्या

कभी आपको पहचान सकता है, जब तक आपकी कृपा से इसे विचारे का नेत्र न प्राप्त होवे। दीनबन्धो! बिच्छू का स्वभावही डङ्क मारने का है! बालक की प्रकृतिही अपमान की है! फिर क्या सज्जन इसका विचारकर उनको दोषभागी बनाते हैं। दयानिधे! इस बालबुद्धि के दुराचार का बिचार आप न करें इसे छोड़ दें, अपनी करनी का फल यह आपही भोगेगा, निष्कलङ्क सूर्य पर जो चूकता है, वह थूक उसी के मुख पर पड़ता है। आर यदि आपसे जगन्मंगल से सगाई करने का यही फल हो कि आपके श्वसुर को पुत्र शोक और दासी को भ्रातृ शोक हो तो, यहां मेरी जिह्वा बन्द है, मैं कुछ नहीं निवेदन कर सकी (रोने लगती हैं)

श्रीकृ०—सारथी! प्राणाधिका के अनुरोध से मैं रुक्म को छोड़ने के लिये बाध्य हुआ, किन्तु इसको इसके दुराचरण का फल चखाना अवश्य है, अतएव तुम इसका उचित शासन करो? (कुछ संकेत करते हैं)

सा०—जो आज्ञा! (सिर और दाढ़ी मूंछ का बाल मूंड़ रुक्म को रथ में बाँध देता है)

(श्रीबलराम का प्रवेश)

बल०—भ्रातः! हमने रुक्म की सेना को परास्त करके

विद्रूप किया, और तुमने सिर और दाढ़ी मूंछ का बाल मूंडकर इसे विद्रूप बनाया, फिर अब इसको रथ से बाँध रखने को कौन आवश्यकता है, इसको छोड़ दो?

श्रीकृ०—अग्रज की जैसी इच्छा। (रुक्म छोड़ दिया जाता है)

(भगवान श्रीकृष्ण का रथ सञ्चालन)

(जवनिका पतन)

श्रीरुक्मिणीपरिणयनाटक

का

एक अतिरिक्त अङ्क

(स्थान शय्याभवन)

(भगवान श्रीकृष्ण एक सुकोमल तल्प पर विराजमान, व्यजनहस्ता रुक्मिणी समीप दण्डायमान)

(सुलोचना व सुनैना दो परिचारिकाओं का प्रवेश)

सुलो०—सखी ! सुनयने ! आज कैसे आनन्द का दिन है, समस्त द्वारिकानिवासियों का हृदय आज कैसा सुप्रसन्न है ! महनीयकीर्ति महात्मा श्रीकृष्ण के सदर्प कुण्डलपुर जाने और वहाँ प्रबल शिशुपालादि के आने का विवरण सुनकर जो मन दिन रात उद्विग्न रहा करता था, वह अब उक्त महात्मा के अति पर समूह का अभिमान निवारण करके सकुशल द्वारिका आने, और लोकललामभूता महाराणी रुक्मिणी के साथ समारोहपूर्वक उद्वाह करके जगज्जन को आनन्दित बनाने से कैसा हृष्ट और आनन्दविनिमग्न है ।

मानों दुर्द्दर्षसिसिरसन्ताडित पुष्पपत्रहीन पादप, सरस ऋतुराज समागम से नयनोत्सव अभिनव किसलयसमूह और मनोरञ्जनकुसुमकदम्ब भार से अवनत बन गया।

सुन०—सखी! केवल इतनाही आनन्द का विषय नहीं है। यह कितना हर्षप्रद सुसमाचार है, कि जिस काल पूज्य महर्षिगण, राजनन्दिनी रुक्मिणी का शुभपाणि-पीडन महात्मा श्रीकृष्ण के साथ करा रहे थे, उसी समय कुण्डलपुर से आगत एक दूत ने प्रभूत यौतुक महाराज उग्रसेन के सन्मुख रक्खा, और उसको महाराज भीष्मक का प्रेरित बतलाकर समग्र विवाहप्रांगण स्थित सुजनों को आनन्दित कर दिया।

सुलो०—यह कैसे? जिस दुष्ट रुक्म ने पिता को शुभदर्शना रुक्मिणी का विवाह लोकरञ्जन श्रीकृष्ण के साथ करने से रोक रक्खा, सदर्प पराक्रान्त श्रीकृष्ण के साथ समरांगण में घोर आहवकार्य में परिणत हुआ, उसने फिर पिता के यौतुकप्रेरण का अनुमोदन करके सम्बन्ध की रज्जु को क्यों पुष्ट करने दिया?।

सुन०—सखी! क्या भवितव्य के निगूढ दाम का बन्धन कोई उन्मोचन कर सकता है? क्या विधाता द्वारा दृढ़ीकृत सम्बन्ध को कोई विदूरित करने में समर्थ हो सकता है? पर इस कार्य्य का कारण और है।

सुलो०—सो क्या सखी? शीघ्र कह। क्योंकि इस विषय को श्रवण करने के लिये मेरा मन ऐसा समुत्सुक है जैसा किसी काल में भगवान पार्वतीनाथ का मन जगन्निवास भगवान विष्णु का मोहनी रूप देखने के लिये समुत्कण्ठित हुआ था।

सुन०—सखी! जिस काल क्रूरकर्मा रुक्म महात्मा श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिये कुण्डलपुर से प्रस्थान का उपक्रम कर रहा था; उस काल उसने प्रण किया, कि यदि मैं कृष्ण को समराङ्गण में विजित करके सहोदरा रुक्मिणी को छीन न लाऊँगा, तो फिर कुण्डलपुर में पदार्पण न करूँगा। किन्तु यह कब हुआ है कि एक क्षुद्र पक्षी पराक्रमशाली पक्षिराज गरुड़ को परास्त करे, अथवा लघु पिपीलिका दुर्दान्त महायशा शेषनाग पर विजय पावे। अतएव वह जब पराजित होकर लौटा तो अपने प्रण अनुसार कुण्डलपुर न जाकर उसी के समीप एक भोजकट नामक नगर बसाया, और अपने पूज्य पिता से द्वेष करके अब सपरिवार वहीं रहता है। सखी! यही कारण उसके इस शुभकार्य में बाधक न होने का है अथवा यों समझो कि नागगण सुलोचना का शुभविवाह दशकण्ठतनय से हुये पीछे आपही उसके मित्र हो गये।

सुलो०—हाय! रुक्म ने भी कैसी कुमति विचार की थी, जो रुक्मिणी ऐसी जगन्मोहिनी को शिशुपाल ऐसे क्रूर से प्रणयपाश में आवद्ध करना चाहा था।

सुन०—पर यह कब हुआ है, कि मालतीलता तमालतरु छोड़ बबूल से लिपटे, और चन्द्रिका निशाकर को त्याग सैंहिकेय से स्नेह करे।

सुलो०—(शय्याभवन की ओर देखकर) सखी! यह सज्या-भवन कैसा लोकललाम और मनोरञ्जक है! इसकी कनकनिर्मित भीतें जिनमें अनेक प्रकार के समुज्वल मणि जटित हैं कैसी सुन्दर और रमणीय हैं! स्वर्णीय स्तंभों की विशालता और विचित्रता और उसमें के कौशल्य सहित रचित चित्रों की अनुपमता कैसी अपूर्व है! पन्ने द्वारा विरचित आम्रपत्र और स्वर्णविनिर्मित रज्जु का समन्वय करके तोरण का निर्माण कैसा कौशलमिश्रित कार्य है! मोतियों की झालरें और युक्ति-पूर्वक चाँदी से रची बन्दनवारें कैसी स्पृहणीय हैं! बहुमूल्य विद्रुमविरचितयुगलद्वारकपाट कैसे ललित और प्रशंसनीय हैं! उनका मणिमय कील काँटा कैसा अद्भुत है। कलितकल्पलता के कल कुसुमों, एवं अनुपम अगर अथच मलयोद्भूत चन्दनों की सुगन्धि से सारा प्रासाद कैसा गन्धवह और सौरभवितरक है! (सुनना नाट्य करती है)

सुन॰ - सखी! वह (तर्जनी द्वारा लक्ष्य करती है) देखो! चन्द्रानना राजनन्दिनी रुक्मिणी खड़ी हुई लोकरञ्जन भगवान श्रीकृष्ण से बातें कर रही हैं। जिनके कोकिल से कोमलालाप को तुम चकित सी होकर श्रवण कर रही हो । अहा! सजलजलदगात महात्मा श्रीकृष्ण के समीप खड़ी चञ्चला राजतनया की कैसी शोभा है!

पद ।

सखी! लखु दामिनि भूमि खरी ।
सजलजलदतन जदुनायक ढिग चौगुन चाव भरी ।
किधौं मालती तरु तमाल तजि रमकम आहि अरी ।
कै नीलम की करी पास है कनकबेलि बगरी ।
मरकतमनि समीप कै सोहत दीपक जोति धरी ।
हरीऔध कै पन्ना के ढिग राजत मोति लरी ॥ १ ॥

सुलो॰—सखी! सत्य है! ऐसीही शोभा है! किन्तु महारानी इस काल अपने प्राणनाथ से कुछ बातें करती जान पड़ती हैं, अतएव हम दोनों का वहां चलना युक्तिसंगत नहीं हो सकता, आओ! शृङ्गारभवन की ओर चलें ।

सुन॰—सत्य है! इस समय वहां जाने से वही गति होगी जो गति वायु की घनपटल और विद्युल्लता के बीच जाने से होती है । तथापि यहां से चले चलने को

भी जी नहीं चाहता, क्योंकि वह दम्पति के सप्रेमस-
भाषण श्रवण का परमोत्सुक है। अतएव आओ! इस पर्दे की ओट में बैठकर राजनन्दिनी और महात्मा श्रीकृष्ण [illegible]व द्रष्टव्य चरित्रों को अवलोकन करें।

(दोनों एक पर्दे की ओट में बैठ जाती हैं)

श्रीकृ०—प्राणाधिके! यह कैसा अन्याय है जो कमलिनी अपने परमस्नेही रसिक चञ्चरीक से स्नेह न करके सुदूरगगनविहारी दिवाकर से प्रीति रखती है और रात्रिकाल में उसको आपत्ति में पड़ा हुआ देखकर उसके समादर के लिये अपना मुख थोड़ा भी नहीं खोलती।

श्रीरु०—प्राणनाथ! क्या वह झूठे प्रेमी, स्वार्थपरायण, अमितकुसुमसुगन्धरत, भ्रमर के लिये अपने वास्तविक-हितैषी, आजन्मप्रिय, भगवान दिवानाथ के वियोग की अवस्था में सुविकसित होकर अपने धर्म्म को नष्ट कर सकती है? कदापि नहीं। वियोग क्या संयोगावस्था में भी वह उस चपल का विश्वास नहीं करती और स्वोदरस्थरजों से उसको अन्ध बनाती रहती है क्योंकि ऐसे अविश्वासियों से स्नेह न करनाही न्याय है

श्रीकृ०-प्यारी! सरोजिनी को प्रखर दिवाकर से स्नेह रखने में कोई सुख नहीं है। क्योंकि वह उसके क्रीड़ा-

खल सरोवरादि के जल को सदैव शुष्क करता रहता है और स्थानच्युत होने पर वही उसको जला देता है।

श्रीरु०—भगवती पार्वती की भांति पति से अपमानित होकर जल जाने में उसको वह दुःख नहीं है जो उसको भ्रमर ऐसे चपल जन्तु से स्नेह करने में है।

श्रीकृ०—प्रिये! जो हो। किन्तु जहां तक मैं सोचता हूँ तुमको यह कदापि योग्य एवं समुचित नहीं था कि तुम पराक्रान्त शिशुपाल समान, स्वरूपमान, प्रेमिक, कुलीन, शूर और ऐश्वर्यशाली को त्याग मेरे ऐसे कुरूप, कायर, अकुलीन दासवृत्तिपरायण और कठोरान्तःकरण से स्नेह करो। देखो मैं प्रबल जरासन्ध के त्रास से पलायित होकर सकुटुम्ब एक क्षुद्र द्वीप में जीवनयात्रा निर्वाह कर रहा हूँ, तथापि शङ्कित रहता हूँ। फिर मुझ ऐसे क्षुद्र एवं कापुरुष से स्नेहबद्ध होकर जीवन व्यतीत करने में तुमको कौन यश मिलेगा? प्रिये! तुम्हें कौन महारानी कहेगा? किन्तु अभी भी बहुत कुछ नहीं बिगड़ा है, इच्छा करनेही से तुम नृपवर्य्य शिशुपाल के यहां चली जा सकी हो क्योंकि मैं तुमको बहुत प्रसन्नता से आज्ञा दे दूँगा। यदि यह कहो कि ऐसाही करना था तो आप कुण्डलपुर जाकर मुझको क्यों लाये? तो प्राणाधारे! मैं सच क

हता हूँ कि इसमें मेरा अणुमात्र भी अपराध नहीं है, वास्तव बात यह है कि तुमारे पत्र के जीवन्त आशय और उत्तेजक पदों ने मुझको धोखा दिया नहीं तो मैं कदापि ऐसे गर्हित कर्म्म करने में लिप्त न होता।

श्रीरु०—प्रियतम! मैंने यह नहीं समझा था कि कमलिनी के दृष्टान्त का उत्थान आपने मेरेही लिये किया था (मूर्छासञ्चार)

श्रीकृ०—अहा! शरदर्तु के निर्म्मल नीले आकाश०की भांति प्राणप्यारी का हृदय भी निर्म्मल है। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो मेरी हँसी की बातों से तत्काल प्राणोपमा की यह दशा न हो जाती (अङ्क में ग्रहण)

सुलो०—सखी! देख! अपने प्यारे की हँसी की बातों पर महारानी रुक्मिणी की कैसी दशा हो गई! पङ्खा करकमलों से छूट पड़ा! मुख पीतवर्ण हो गया, नेत्रों से अविरल अश्रुप्रवाह होने लगा, और मूर्छित होकर वह गिराही चाहती थीं, किन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने उनको अपने गोद में लेकर सम्हाल लिया।

सुन०—सखी! आनन्द की बात है! कि महात्मा श्रीकृष्ण के व्यजनद्वारा वायु करनेव सुशीतल गुलाब का छींटा देने से महारानी रुक्मिणी को मूर्छाभङ्ग हो गई। देखो उक्त महानुभाव के अङ्क से सलज्जभाव पृथक् होकर वह फिर उसी प्रकार पृथ्वी पर खड़ी हो गईं।

श्रीह०—(नाथ ओऽकार)

छन्द ।

हे नाथ भवभयहरन जनसुखकरन श्रीकरुणानिधे ।
मनहरन तारनतरन जगकौतुककरन अगुनहिं विधे ॥
प्रभु मुखकमलदल ते सुकोमल ने सु क्यों अस बच कह्यो ?।
जेहि ते सकल सुखनिसिप को दुखसिंहिकासुत ने गह्यो ॥
जाके सरूप सु ओप सम नहिं अमित रतिपतिहूँ अहै ।
अस कौन जग मतिमन्द जो तेहि रूप को विकृत कहै ॥
मुख जाहि ते द्विज छत्रि भुज ते वैश्य उरु ते जग भनै ।
पग जाहि ते जग सूद्र उपजे तासु कुल कोउ का गनै ॥
अमरेस श्री विभवेस सम जग विभववारो कौन है ।
ए प्रगट अनुचर जासु जग तेहि विभव को कह जौन है ॥
नवनीतहूँ ते सरस जाको हिय पुरान बखानहीं ।
तेहि को कठोरुपमान सों कोउ बुध न कहुँ उपमानहीं ॥
जिन हिरनकस्यप कंस मधुकैटभ रु रावन को हने ।
तेहि सूरकुलकलमुकुटमनि को कौन जग कायर गनै ॥
जेहि नाम बल ते प्रबल पातक कोरि ततछन भाजहीं ।
सो भज्यो लघु मगधेस भय ते हम न हिय अनुमानहीं ॥
प्रभु चरित अद्भुत अकथ को नहिं पार कोउ जग पावई ।
फिर अति अलपमति नारि यह केहि भांति ताहि बखानई ॥
पै कहत सांचो त्यागि अस प्रभुपद हिये केहि पद धरै ।
हरिऔध पारस त्यागि कै जग काँच को संग्रह करै ॥

शीला०—प्रिये! क्यों न हो! यदि तुम ऐसा न कहोगी तो और कौन कहेगा! भागीरथी ही का यह गुण है कि अपनी स्वाभाविक शीतलता से उदधि का हृदय तर रखती है प्राणाधारे ए कठोर बचन हमने केवल रह स्य वर्धन एवं तुमारे इन मधुर बचनों के श्रवण के लिये कहे थे, नहीं तो ऐसा कौन है जो सुविकसित मालिका पर तप्त जल निक्षेप करेगा (उठ करमानन्द परिरम्भन)।

(दोनों सखियां पर्दे के बाहर आकर)

(प्रगट)

पद।

आज हिय परम प्रमोद भयो।

लखि मिलाप नीको पिय तिय को छन में सब दुख दूर गयो। नित नित होउ प्रीति पय जल सम हम सब लखि बिनोद उपजावें। शोक ताप संताप जगत को लखि लखि के छबि दूर बहावें। नेक बिभेद होय नहिं कबहूं नव अनुराग नेह सरसाई। सती सभु, हरि रमा, गिरापद, सम दिगन्त कलकोरति छाई। जुग जुग चिरंजीव यह जोरी रहै धरै जन मन बर नेहा। हरी औध करजोरि रैन दिन बिनवत रहत सदा प्रभु एहा॥

(दोनों सखियों का प्रस्थान)

(जवनिका पतन)